



इलाहाबाद उच्च न्यायालय
लखनऊ
रिट - सी संख्या - 1002017 वर्ष 2010

भारतीय जीवन बीमा निगम

....याचिकाकर्ता(ओं)

बनाम

विशेष न्यायाधीश आयुर्वेद घोटाला प्राकरण लखनऊ

...प्रतिवादी(ओं)

याचिकाकर्ता(ओं) के अधिवक्ता	: पी के खरे, राज कुमार सिंह
प्रतिवादी(ओं) के अधिवक्ता	: मुख्य स्थायी अधिवक्ता, ओपी अग्रवाल

न्यायालय संख्या - 4

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राज कुमार सिंह और प्रतिवादी-राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री दिवेश मिश्रा को सुना गया।
2. 13.5.2024 के आदेश के ज़रिए, यह निर्देश दिया गया था कि अगर प्रतिवादी संख्या-3 के अधिवक्ता अगली तारीख पर भी मौजूद नहीं होते हैं, तो न्यायालय याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और स्थायी अधिवक्ता की दलीलों के आधार पर मामले का फैसला करेगा। इसे देखते हुए, न्यायालय प्रतिवादी संख्या-3 के अधिवक्ता की गैरमौजूदगी में मामले का फैसला करने जा रहा है।
3. याचिकाकर्ता एक निगमित निकाय है जिसे भारतीय जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के तहत बनाया गया है। प्रतिवादी संख्या 3 के पति के नाम पर एक बीमा था। लेकिन बीमा इस वजह से रद्द कर दी गई कि उन्होंने कुछ ऐसी बातें छिपाईं जो उन्हें प्रपत्र में साफ-साफ बतानी चाहिए थीं कि वह एक ऐसी बीमारी से जूझ रहे थे जिसकी वजह से याचिकाकर्ता कोई बीमा नहीं करा सकता था।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

4. इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 3 ने नियमित वाद संख्या 363/1983 (राम जानकी बनाम LIC) फाइल किया। इस वाद में, यह प्रार्थना की गई कि पॉलिसी में बीमा की गई रकम के लिए 18% की दर से ब्याज के साथ एक डिक्री की जाए। यह वाद 10.3.1997 के निर्णय और आदेश से खारिज कर दिया गया। प्रतिवादी संख्या 3 ने सिविल वाद संख्या 99/2001 दायर किया, जिसके ज़रिए उसने विचारण न्यायालय के आदेश की वैधता को चुनौती या अपील पर आखिरकार अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, लखनऊ ने सुनवाई की। अपील न्यायालय ने 18.9.2001 के निर्णय और आदेश के ज़रिए अपील को मंजूरी दे दी, और विचारण न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया। इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 3 ने विचारण न्यायालय के समक्ष डिक्री को निष्पादन के लिए आवेदन दायर किया। याचिकाकर्ता ने ऊपर बताए गए आदेश के खिलाफ सिविल प्रक्रिया संहिता के धारा 47 के तहत एक आवेदन दायर किया। जिसे निष्पादन न्यायालय संख्या 9/2002 के तौर पर यह पंजीकृत किया गया था और याचिकाकर्ता ने धारा 47 के तहत जो आपत्तियां किए थे, उन्हें प्रकीर्ण वाद संख्या 10-C/2003 के तौर पर पंजीकृत किया गया था। निष्पादन कार्यवाही के विरोध में, इस बात पर ध्यान दिलाया गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई डिक्री नहीं है और निष्पादन न्यायालय के पास याचिकाकर्ता द्वारा दी जाने वाली रकम को खुद से तय करने का कोई अधिकार नहीं है।

5. लेकिन, 15.11.2008 के आदेश के ज़रिए, निष्पादन न्यायालय ने आपत्ति को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ता ने ऊपर दिए गए आदेश से नाराज़ होकर जिला न्यायाधीश के सामने एक सिविल रिवीजन दायर किया, जिसे सिविल रिवीजन नंबर 61/2009 के तौर पर पंजीकृत किया गया। जिला न्यायाधीश ने रिवीजन को प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष स्थानांतरित कर दिया। पुनरीक्षण न्यायालय ने 23.2.2010 के विवादित आदेश से पुनरीक्षण को खारिज कर दिया।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ने अपने क्षेत्राधिकार की ठीक से जांच नहीं की है, बल्कि अपनी शक्ति का गलत इस्तेमाल किया है, जो उन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के तहत नहीं दी गई है और याचिकाकर्ता के आपत्ति को पूरी तरह से गैर-कानूनी तरीके से खारिज कर दिया है। उनका कहना है कि अपीलीय न्यायालय ने इस मामले में डिक्री तैयार नहीं की है, इसलिए निष्पादन न्यायालय के पास प्रतिवादी संख्या 3 को देने वाली रकम तय करने की कोई शक्ति नहीं है।

7. दूसरी तरफ, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के पास किए गए आदेश में कोई कमी या गैर-कानूनी बात नहीं है और वे सही और वैध आदेश हैं। उनका कहना है कि डिक्री तैयार न होने की स्थिति में भी, निष्पादन न्यायालय अभिलेख में मौजूद तथ्यों के बारे में जांच कर सकता है और विवादित आदेश पास कर सकता है।

8. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने के बाद, मैंने अभिलेख में मौजूद तथ्यों का अध्ययन किया।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

9. अपील न्यायालय के 18.9.2001 के आदेश को देखने पर, अभिलेख से यह साफ है कि डिक्री तैयार नहीं की गई थी, इसलिए, निष्पादन न्यायालय ने याचिकाकर्ता-भारतीय जीवन बीमा निगम की आपत्ति पर विचार किया होता और फिर आदेश पास किया होता। अपील न्यायालय ने इस मामले में डिक्री तैयार न करके कानून की साफ गलती की है और 18.9.2001 को आदेश पास किया है। निष्पादन न्यायालय ने याचिकाकर्ता की इस आपत्ति पर कहीं भी विचार नहीं किया कि डिक्री तैयार न होने के कारण, प्रतिवादी संख्या 3 को रकम का भुगतान नहीं किया जा सका और विवादित आदेश पास किया। निष्पादन न्यायालय ने 15.11.2008 के आदेश के ज़रिए, याचिकाकर्ता की आपत्ति को पूरी तरह से गलत और गलत आधार पर खारिज कर दिया। पुनरीक्षण न्यायालय ने भी आगे बढ़कर निष्पादन न्यायालय के आदेश की पुष्टि कर कानून की साफ गलती की है।

10. ऊपर बताए गए कारणों को देखते हुए, रिट याचिका सफल होती है और उसे **मंजूरी दी जाती है**। 15.11.2008 और 23.2.2010 के आक्षेपित आदेश को रद्द किये जाते हैं।

11. मामला अपर जिला न्यायाधीश, लखनऊ को वापस भेजा जाता है ताकि वे तथ्य को समझ सकें और एक डिक्री तैयार कर सकें ताकि प्रतिवादी संख्या 3 को संदेय धनराशि दिया जा सके।

(न्यायमूर्ति इरशाद अली)

17 मार्च, 2026

गौतम